RESEARCH EXPRESSION ISSN 2456-3455 Vol. II, Issue 2 and 3, March and September 2017

मैथिलीशरण गुप्त का काव्य : मानववाद का संदर्भ

अभीप्सा*
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

'है कविता का काम लोकहित करना ।
सद्भावों से मन मनुज मात्र का भरना ।।"

गुप्तजी केवल कवि नहीं थे, बल्कि उनका व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति की नयी व्याख्या करने वाले प्रतिष्ठापक का था। अपनी इस प्रतिस्थापना के लिये उन्होंने न तो कोई आन्दोलन किया और न ही भारतीय संस्कृति के नये–पुराने आदर्शों को कभी विवाद का विषय बनाया। उन्होंने समाज के सामने सहदयता और सामंजस्य का एक ऐसा एकीकरण प्रस्तुत किया जो सबको मान्य हो और जिसका सब सम्मान करें। निश्चित ही, उनका यह समीकरण राजनीति और धर्म से परे मानवता की बेदी पर प्रतिष्ठित था। यही उनकी विशेषता है और उनकी रचना–धर्मिता भी, कि वे नये के स्वीकार के बदले पुराने को हेय नहीं मानते और पुराने के शुभ को ग्रहण करते समय उनका नया भाव–बोध किसी प्रकार का अवरोध भी उत्पन्न नहीं करता। वैसे किसी भी राष्ट्र के सामाजिक–सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिये यह जीवन–दृष्टि आवश्यक है। गुप्तजी में यह मानववादी दृष्टि विद्यमान थी। अपने इस महत् कार्य के लिए उन्होंने एक ओर किसान, श्रमिक जैसे उपेक्षित पात्र और उनके समाज को लिया तो दूसरी ओर ऐतिहासिक अथवा पौराणिक पात्र और उनके चरित्रों को। लेकिन ध्यान रखना होगा कि अपनी इस अभिव्यक्ति में उन्होंने इतिहास या पुराण के प्रमुख पात्रों की अपेक्षा लघु और उपेक्षित पात्रों को ही केन्द्र में रखा। 'साकेत' में उर्मिला को, 'यशोधरा' में यशोधरा को तथा 'विष्णुप्रिया' में विष्णुप्रिया को केन्द्रीय पात्र बनाया। सबसे बड़ी बात यह है कि गुप्तजी ने इन पात्रों के मानवीय रूप की प्रतिष्ठा की। उनके इस रूप की जो अब तक कवि–मनीषियों द्वारा समाहित नहीं किए जा सके थे अथवा उनके उस संवेदनात्मक पक्ष पर ध्यान नहीं दिया गया था जो इनको विशिष्ट बनाते हैं। गुप्तजी ने इन उपेक्षित पात्रों के औदात्य को समझा भी और उनके मानवीय संवेदनाओं का उद्घाटन भी किया। उन्होंने उनके मानवीय दर्द, मूल्यबोध, अस्मिता और संघर्ष को सर्वथा नवीन रूप में रूपायित किया। इस संबंध में डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने ठीक ही लिखा है। उनका कहना है कि "गुप्तजी ने नारियों के प्रति जिस पूज्य भाव को स्थान–स्थान पर व्यक्त किया है, वह रूढ़िवादी परिवार के कवि की दृष्टि से विचित्र हो सकता है, किंतु कवि की दृष्टि इतनी व्यापक है कि वह नारी के अधिकारों को युगधर्म के साथ घटित करके ही स्थापित करने में मानवता का कल्याण देखता है।" (द्विवेदी युगीन हिंदू नवरत्न) गुप्त जी के आदर्श स्थापन में संकीर्णता का भाव नहीं है, सम्पूर्णता का भाव है। उन्होंने भारतीय नारी के संदर्भ में 'अबला जीवन' की कहानी प्रस्तुत करते समय 'आँचल में है दूध और आँखों में पानी' की व्यंजना द्वारा जो चित्र अंकित किया है, उसमें नारी जाति की एक विशेषता है। विवशता अथवा परवशता न होकर, दायित्व–बोध और कर्तव्य–पालन की व्यंजना है। नारी की महत्ता, आदर्श स्थापन और उसके कल्याणकारी रूप को 'यशोधरा' में गौतम बुद्ध के मुख से इस प्रकार कहलवाया है–

'दीन न हो, गोपे, सुनो, हीन नहीं नारी कभी
भूतदया–मूर्ति वह, मन से, शरीर से।'

लेकिन यहाँ यह प्रश्न भी स्वाभाविक है कि भारतीय संस्कृति में नारी को इसलिये महान कहा गया है कि पुरुष वर्चस्व के नीचे दबे होने अथवा वंचिता होने पर भी वह 'उफ्' तक नहीं कहती? जैसा कि 'जयभारत' में इस ओर संकेत किया गया है–

'नारी लेने नहीं लोक में देने ही आती है।'

इस 'देने' के भाव में गर्व नहीं है– 'पर देने में विनय न होकर जहाँ गर्व होता है', तपस्त्याग का पर्व हमारा वहीं खर्च होता है।' दूसरी ओर वह पिता की चिंता और घर का बोझ समझी जाती रही है– "मैं त्याग, के ही अर्थ हूँ, बच भी रहूँ तो व्यर्थ हूँ।" (बक्–संहार)

आज हम कल्पना कर सकते हैं कि संक्रमण के उस दौर में, जब आधुनिक मूल्यों की पहचान हो रही थी और पारम्परिक मूल्यों को नये संदर्भ दिये जा रहे थे तब कवि की मनःस्थिति को समझा जा सकता है। नारी शोषण और मानवीय मूल्यों के क्षरण में उन

*Corresponding Author: Email: abheepsa22patel@gmail.com • Mobile No. 08130352696

स्थितियों को भी समझना चाहिए कि इसके लिए पुरुष समाज जिम्मेदार है अथवा स्वयं नारी ने ही अपने शोषण की स्वीकृति दी? इन प्रश्नों से जूझते हुए गुप्त जी ने विरासत के श्रेष्ठ मूल्यों को पुनर्प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया और नारी के प्रति संवेदना का एक सजीव वातावरण बनाया।

वस्तुतः गुप्त जी का मानव–मूल्य सर्वभूतवाद और लोक–कल्याण पर अवस्थित है। उन्होंने अपने सम्पूर्ण साहित्य में मानवता को ही पारिभाषित किया है। उनका चिंतन जगत् जीवन के दोनों पक्षों–आंतरिक और बाह्य–को लेकर चला है। इसमें एक ओर सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की व्यापकता को व्यंजित किया गया है तो दूसरी ओर मनुष्य के मनोवैज्ञानिक धरातल की सही पहचान है। उनका कथ्य सुदूर अतीत से लेकर भविष्य तक, उच्चवंश से लेकर सामान्य किसान वर्ग तक फैला हुआ है। उनका स्वर आदर्शवादी भी है और यथार्थवादी भी, किंतु सर्वत्र मानव–मूल्यों की ही प्रतिष्ठा है। यह सच है कि उनकी आरंभिक कविताओं का स्वर अधिक सपाट और इकहरा है किंतु धीरे–धीरे वह आदर्श की ओर अधिक संश्लिष्ट होता गया है।

गुप्त जी भारतीय जन की आवाज थे, जन भावनाओं के व्याख्याकार थे। वे उस समय की निर्धनता और दयनीय स्थिति को देख रहे थे। अशिक्षा, पिछड़ापन और साधनहीन जन के दुखों को भी समझ रहे थे। ऐसे असहाय और निर्धन जनों के प्रति सहानुभूति उन्हें प्रारंभ से ही रही। 'भारत–भारती' में आत्मीयता का भाव सर्वोपरि है। इसके 'अतीत खण्ड' में भारत की अतीत–गौरवगाथा गाने में जो तल्लीनता, उत्साह और उच्छ्वास है, 'वर्तमान खण्ड' में भारत की अवनति के वर्णन में जो ग्लानि, व्यथा, क्षोभ, भर्त्सना तथा व्यंग्य है और 'भविष्यत खण्ड' में जो आंतरिक सलाह एवं परामर्श है, वह भारत एवं भारतवासी के प्रति गुप्तजी के अन्तर्मन में प्रगाढ़ आत्मीयत्व और प्रेम का भाव न होने से संभव नहीं होता। भारत एवं भारतवासियों की अवनति के संदर्भ में उनकी व्यथा देखिए :

है शेष लिखने के लिए क्या इस अभागे को यही?
भगवान! भारतवर्ष की कैसी अधोगति हो रही।

(भारत–भारती)

यहाँ 'इस अभागे' के माध्यम से जो आत्मग्लानि और क्षोभ व्यक्त हुआ है वह अपने से, अपनों से है, जिसे दूर करना आवश्यक था। इसलिए उन्होंने 'नारायणी नरश्चैव तत्वमेकंद्विधकृतम्' द्वारा मानव के ऊर्ध्वगमन के लिए सदाशयता, सच्चरित्रता और सात्विकता को प्रधान गुण मानते थे।

जैसा कि हमने कहा कि गुप्तजी का मानव–मूल्य जन सेवा की उच्चतम भूमि पर प्रतिस्थापित है। यह उस युग की मांग भी थी, जिसकी पूर्ति गुप्तजी ने मुक्त कंठ से की। गुप्त जी उस युग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो अपने अतीत से न तो विवेक और तर्क के स्तर पर मुक्त हो पाया था और न उससे ऑख मूंदकर जुड़े रहना चाहता था। ऐसे संक्रमण काल में उन्होंने पुरातन आदर्शों की अच्छाइयों को प्रगतिशील रूप में प्रस्तुत किया और ऐसे समीकरण खोजे, जिसमें भारत को हानि पहुँचे बिना सहज और सरल मार्ग मिल जाये। उनका मानव–मूल्य इसी मार्ग का अनुसरण करता है। प्रेम, त्याग और सेवा उनका मूल मंत्र है। 'अनघ' में उन्होंने लिखा है–

'न तन सेवा, न मन सेवा, न जीवन और धन सेवा ।
मुझे है इष्ट जन सेवा, सदा सच्ची भुवन–सेवा ।।'

'जन सेवा' और 'भुवन सेवा' का यह भाव 'साकेत' में और अधिक प्रखर रूप में उभरा है–

'भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।' (साकेत)

'साकेत' गुप्तजी की कीर्ति का एक प्रमुख आधार है। इसमें उन्होंने लोक में प्रतिष्ठित रामकथा का आधार तो लिया है किंतु कथा के परम्परागत रूपों पर न चलकर अनेक मौलिक उद्भावनाएँ की हैं । मानवीय संबंधों की पड़ताल उनमें से एक है । लोकानुभव, सद्वृत्ति और भावुकता यहाँ जगह–जगह क्रियाशील होकर मानवीय संवेदनाओं को व्यंजित करने में सहायक सिद्ध हुई है। गुप्त जी इहलोक पर विश्वास करते हैं और इहलोक को सुधारने पर बल देते हैं। वे कहते हैं–उनको मुक्ति कहां जिनका है, ऐहिक जीवन ही मृतमंद और 'खोके यहाँ सब, वही हम पायेंगे क्या' (जयभारत)।

गुप्तजी वैष्णव–धर्म और सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे। उन्हें यह विरासत में मिला था। इससे वे जीवन ऊर्जा प्राप्त करते थे । गाँधी जी जैसे राष्ट्र नायक ने भी इस सम्प्रदाय से ऊर्जा प्राप्त कर सर्वोदय सिद्धान्त जैसी उच्च मान्यताओं का व्यावहारिक रूप प्रतिपादित किया था। साहित्य में यही कार्य गुप्तजी ने किया। उनकी वैष्णव–भावना में संकीर्णता, हठधर्मिता अथवा रूढ़िवादिता के लिए कोई स्थान नहीं

था। आज जिस मानवतावादी विचारधारा के प्रचार के प्रयत्न हो रहे हैं उसका पुष्ट रूप गुप्तजी की रचनाओं में अंतर्निहित है। सच कहा जाय तो तत्कालीन रचना–जगत् में उनके जैसी उदार दृष्टि नहीं दिखाई देती। वे वर्ण–व्यवस्था और मर्यादा के बीच दलितों, पीड़ितों को गले लगाने को उद्यत रहे । उनकी उदार दृष्टि मानव–मानव के बीच किसी प्रकार के द्वैत भाव को स्वीकार नहीं करती। उनकी भावना सर्वभूतकल्याण पर आधारित रही, जिसके मूल में अहिंसा, प्रेम, समता, ममता निहित हैं। 'पृथ्वीपुत्र' में उन्होंने यह संदेश दिया है–

'मिथ्या दर्प छोड़ने का साहस हो तुझमें
देश, कुल, जाति किंवा वर्ग–भेद भूल के
जा तू विश्व मानव हो जा सेवा कर सबकी।'

इसी तरह शोषित, पीड़ित, दीन–हीन के प्रति करुणा का भाव रखते हुये 'जयिनी' (खण्डकाव्य) में उन्होंने लिखा– 'किंतु श्रमिकों को, फल मिलता है कितना? पूँजीपतियों का नहीं जूठन भी जितना!' उन्होंने अमीर–गरीब–दोनों समाज के लिए कहा–

'मैं धनिकों को भावदान दूँ, तुम दीनों को भाषा,
सत्य सभी सह सकें तुम्हारा, यह मेरी अभिलाषा।' (जयिनी)

यह अभिलाषा विश्व मात्र की मंगल–कामना करने वाली अरूप करुणा मात्र नहीं है बल्कि अपने राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक विसंगतियों तथा असत्यों से लड़ती हुई एक नयी मूर्त सर्जना के लिए चिंतित ऊर्जा भी है–

'अधिकार खो कर बैठे रहना, यह महा दुष्कर्म है
न्यायार्थ अपने बंधु को भी, दण्ड देना धर्म है।' (जयद्रथवध)

इसमें मानवतावाद के अंतर्गत ही कर्म और अकर्म, धर्म और अधर्म की नयी व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इन पंक्तियों के माध्यम से कवि ने परतंत्र भारत की बेबसी, छटपटाहट, पीड़ा और अभिशाप को व्यक्त करने के साथ–साथ अपने अधिकारों को भी सुनिश्चित किया है। इस संघर्ष के लिए उन्होंने वर्तमान से ही नहीं, अतीत से भी ऊर्जा ग्रहण कर अपने विचारों को पुष्ट किया है।

गुप्तजी प्रगतिशील रचनाकार थे। सत्यान्वेषण और कालानुसरण की प्रवृत्ति उनमें अधिक थी। उनकी इस प्रवृत्ति की प्रशंसा करते हुये आचर्य शुक्ल ने लिखा है– "गुप्त जी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता है कालानुसरण की क्षमता, अर्थात् उत्तरोत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्य–प्रणालियों को ग्रहण करते चलने की शक्ति।" (हिंदी साहित्य का इतिहास) नवीन काव्य–प्रणाली को ग्रहण करना एवं उनमें मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा करना उनका मुख्य ध्येय था, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है। उन्होंने अपने प्रबंधकाव्यों में जैसे कि राम आदि के चरित्रों की रचना की एवं उनके मानवीय आचरण को चित्रित किया, उसी तरह श्रमिकों, किसानों की अवस्था का चित्रण किया। दरिद्रता और दुर्भिक्ष जैसी विषम परिस्थितियों का चित्रण करते हुये वे लिखते हैं–

'पानी बनाकर रक्त का, कृषि कृषक करते हैं यहाँ,
फिर भी अभागे भूखे से दिन–रात मरते हैं यहाँ।
सब बेचना पड़ता उन्हें निज अन्न, वह निरुपाय है,
बस चार पैसे से अधिक पड़ती न दैनिक आय है।' (भारत–भारती)

इस प्रकार कहा जा सकता है कि गुप्तजी जिस तरह की कविता लिखते थे और जिन भावनाओं के साथ लिखते थे, वह मानवीयता की और मानवप्रियता की कसौटी थी । उनकी कविता के मुख्य विषय देश की आशा–आकांक्षा, सम–विषम परिस्थिति एवं आत्मा के सत्य और ताप को प्रतिबिम्बित करना था। समग्र रूप से वे समष्टि–संस्कृति के कवि थे।